तुलसी का ब्याह

दुर्गा भागवत

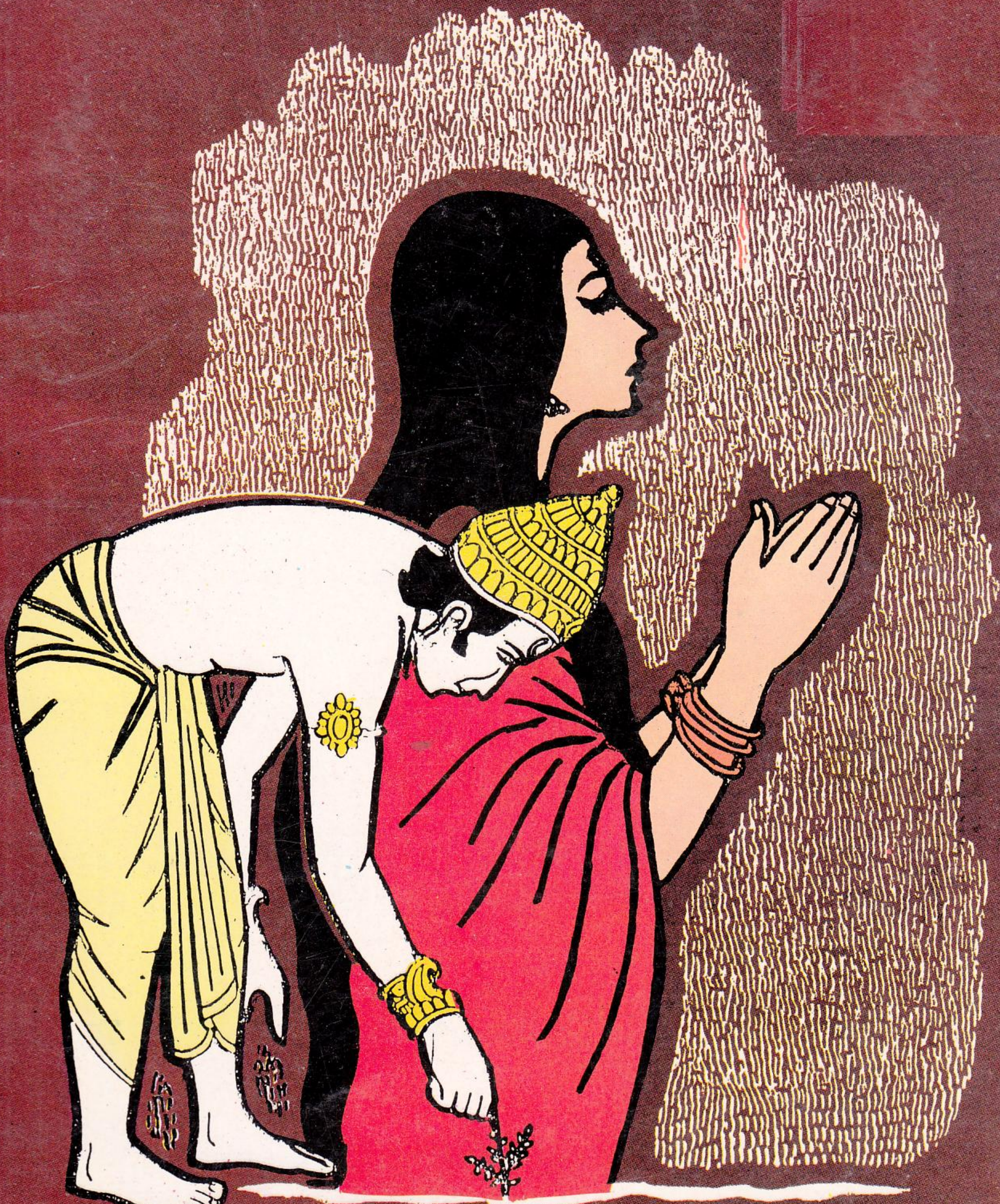

तुलसी का ब्याह

लेखक : दुर्गा भागवत

अनुवाद : शान्ति देवी

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

भारत सरकार

प्रथम संस्करण : श्रावण 1894 • जुलाई, 1972
द्वितीय संस्करण : पौष 1900 • दिसम्बर, 1978
तृतीय संस्करण : वैसाख 1916 • मई, 1994

© प्रकाशन विभाग

ISBN 81-230-0132-0

मूल्य : 18 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8 एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800001
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनन्तपुरम-695001
- 10-बी. स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्रस्तावना

'तुलसी का ब्याह' प्रसिद्ध मराठी लेखिका दुर्गा भागवत की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें एक प्रचलित लोक कथा के आधार पर तुलसी के पौधे की उत्पत्ति की रोचक कहानी है। यह पौराणिक कथा से बिल्कुल भिन्न है पर दोनों में एक विचित्र समता भी है। पौराणिक कथा में भी इस लोक कथा की तरह ही तुलसी के पौधे की उत्पत्ति एक सती स्मणी के केशों से बताई गई है। यह शंखचूड दानव की पत्नी थी। शंखचूड ने देवताओं को हरा कर उनके सारे अधिकार छीन लिए थे। महासती पत्नी के प्रभाव से वह किसी से मारा नहीं जाता था। तब शंकर भगवान उससे युद्ध करने गए और नारायण ने शंखचूड का रूप धारण कर उसकी पत्नी का स्पर्श किया। इससे शंखचूड युद्ध में मारा गया। तुलसी के शाप से नारायण को पत्थर (शालिग्राम) बनना पड़ा। नारायण के आशीर्वाद से तुलसी गण्डकी नदी बनी और उसके केशों से तुलसी के पौधे, जिसे नारायण अपने वक्षस्थल पर धारण करते हैं और (तुलसी दल) भोजन में डाले बिना उन्हें भोग नहीं लगता।

लोक कथाओं के क्षेत्र में दुर्गा भागवत पथ-प्रदर्शक का स्थान रखती हैं। (उन्होंने देश भर में घूम-घूम कर लोक कथाएं लिखी हैं।) उनकी एक कृति 'ऋतुंचक्र' पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उनका जन्म 10 फरवरी, 1910 को हुआ था।

बच्चों के लिए लोक कथाएं बड़ी उपयोगी होती हैं। ये उनके स्वप्नों और कल्पनाओं को सजीव बनाती हैं। उनके विचारों को नया रूप देकर चरित्र-निर्माण में भी सहायक होती हैं। प्रकाशन विभाग ने समय-समय पर जो लोक कथाएं प्रकाशित की हैं उनका लोगों ने बड़ा स्वागत किया है। इसी से प्रोत्साहित होकर इस रोचक बाल कथा का यह तीसरा संस्करण प्रस्तुत है।

अनुक्रम

दरिद्र ब्राह्मण	1
जंगल में तुलसी	9
राणा विठोवा से भेंट	14
तुलसी का घर	17
रुक्मिणी की करनी	20
तुलसी का मौन	24
पृथ्वी माता	27

दरिद्र ब्राह्मण

बहुत पुरानी बात है - उस समय की, जब मनुष्य बड़े भोले-भाले होते थे, तथा देवता मनुष्यों से हिलमिलकर रहते थे। उस काल में देवता इधर-उधर घूमते थे। वे राजा के घर में भी जाते और गरीबों की झोंपड़ी में भी। मनुष्यों में जो भव्य, दिव्य, अक्रोधी तथा करुणामय होते थे उन्हें वे अपना समझते थे और जिनमें छल, लोभ, दुष्टता इत्यादि अवगुण होते थे, उनको वे दण्ड देते थे। पर वे इतने भावुक होते थे कि भक्तों के सामने एकदम झुक जाते थे। वे कभी छोटे-से-छोटे, कभी बड़े-से-बड़े, कभी मोम से भी मुलायम, कभी वज्र से भी कठोर बन जाते थे। भक्त और अभक्त दोनों के लिए ही वे समय-समय पर अपना स्वभाव बदलते रहते थे। पुराण लिखे जाने से पहले का यह काल था। अधिक क्या, इसी काल की महिमा पुराणों में गाई गई है।

अपने विठोबा देव भी उस समय केवल पत्थर के ही नहीं थे। वे गांव-गांव घूमा-फिरा करते थे। कहीं कोई बुड्ढा या बुढ़िया कष्ट में पड़ी दिखाई पड़ जाए, तो झट से उसके बच्चे बन कर उसको सहारा देते। लड़कों, बच्चों को मित्र बनाते। माली की फूल की टोकरी को हाथ लगाकर उठवा देते थे। जो जैसा होता था उससे वैसा ही नाता जोड़ते थे। तुलसी से भी उन्होंने ऐसा ही नाता जोड़ा। उससे उन्होंने विवाह किया। परन्तु और पुरुष जैसे दूसरी बहुओं (दुल्हन) से विवाह करते हैं यह वैसा नहीं था। विठोबा ने पेड़ से विवाह किया।

(उत्तर भारत में जिस प्रकार कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते और पूजते हैं, उसी प्रकार महाराष्ट्र में विट्ठलनाथ को विष्णु का अवतार मानते हैं और पूजते हैं और आदरपूर्वक उन्हें विठोबा कहते हैं। पंढरपुर उनका मुख्य स्थान है।)

अच्छा, तो सुनो ब्राह्मण की कहानी।

कोंकण में एक गांव था। वहां पर एक दो साहुकारों के, दो चार ब्राह्मणों के और बाकी सारे घर कुणबियों * के थे। कोंकण का मतलब ही है दरिद्रों का गांव। इसलिए इस गांव मे कोई बड़े लोग नहीं थे। फिर उस गांव के भिक्षुकों के बारे में क्या सोचना?

चार ब्राह्मण भिक्षुकों के कुटुम्ब का पेट पालन इस छोटे गांव में कैसे सम्भव था?

फिर भी उनमें जो भिक्षुक वेदमन्त्र जानते थे, उनको मान और धन जैसे-तैसे मिल जाता था। इन चार कुटुम्बों में तीव्र स्पर्धा भी चलती थी। तांबे के एक पैसे के लिए वे वर्ष भर लड़ते-झगड़ते थे। ऐसी स्थिति में जिन भिक्षुकों को विद्या नहीं आती थी, उनके लिए सिवाय भिक्षा के गुजारे का और रास्ता ही क्या था?

---

* कुणबी एक जाति विशेष है, जो खेती का काम करती है।

राघोपन्त ऐसे ही दरिद्र भिक्षुकों में से एक था। दरिद्र और सदा का अभागा लड़कपन से ही जहां कहीं भी वह जाता था, वहां सब उलट-पुलट हो जाता था। यह तो जैसे निश्चित ही था। यश तो कभी उसे मिला ही नहीं। राघोपन्त ने जन्म भी ल़िया, तो मूल नक्षत्र में और उसके पिता भी मर गए। सब लोग उसे तब से मसणभट्ट (महाब्राह्मण) कहने लगे। उसकी मां भी उसके ऊपर हमेशा गुस्सा किया करती थी। घर में पैसे की कमी तो पहले से थी केवल उसका बड़ा भाई थोड़े पैसे वाला था क्योंकि वह इधर-उधर जाकर थोड़ा पुराण सुनाकर कुछ पैसा पैदा कर लेता था। पर राघोपन्त को विद्या पढ़ाने का जैसे किसी को ध्यान ही नहीं आया।

ब्राह्मण का लड़का था, इसलिए थोड़ा लिखना-पढ़ना उसे आ गया। पुराणों को सुनकर थोड़ा-सा पूजा पाठ का ज्ञान हो गया। बस, इतनी ही उसकी सारी विद्या थी।

सारा दिन वह करे क्या। जंगल में जाकर लकड़ियां तोड़ता था और घर के खाने-पीने के लिए जलाने की लकड़ी इकट्ठी करके रखता था। खेती की रखवाली करता था। मजदूरी करता था। पर उसके बड़े भाई ने पुराण कह-कहकर और साहूकारी करके घर-द्वार अच्छी तरह बनाया। खेती-बाड़ी की। बहन का विवाह भी किया। राघोपन्त के ऊपर मंगल का ग्रह था। इसलिए वैसे ही एक दूसरे भिक्षुक की भारस्वरूप काली, नाटी लड़की से उसका विवाह हुआ। पुरानी झोंपड़ी जैसे टूटे-फूटे घर मे रहकर राघोपन्त गृहस्थी चलाने लगा।

राघोपन्त ने अपना गृहस्थ जीवन तो शुरू किया, पर वह तो बचपन से अभागा था। कैसे उसकी गृहस्थी चलती? वह पुराण सुनाए, तो सुनने भी कौन आए? कहीं कोई मर-वर जाए तो इसको क्या क्रिया-कर्म कराना आता था? एकदम दरिद्र लोग ही उसको बुलाते थे। मृतक कर्म में भी जिसे कोई नहीं बुलाता था, उसे शुभ प्रसंग में भला कौन बुलाता? यदि वह कभी जाता भी, तो हमेशा ऐसे ही मृतक कर्म पर। इसलिए राघोपन्त का स्थायी नाम मसणभट्ट (महाब्राह्मण) हो गया। राघोपन्त की यह इच्छा थी कि जिस तरह उसके भाई को लोग भास्करभट्ट कहते हैं, उसी तरह उसे भी राघोभट्ट कहें। मुंह पर तो लोग उसे राघव या राघोपन्त कहते थे, पर पीठ पीछे तो मसणभट्ट उसका पक्का नाम था।

पहले कभी-कभी जोड़ा समझकर राघोपन्त और त्रिवेणीबाई को निमन्त्रण मिल जाता था। पर विवाह के बारह वर्ष बाद भी जब उसे कोई बच्चा नहीं हुआ, तो वह निमन्त्रण आना भी प्रायः बन्द हो गया। हाथ की झोली ही उसके हाथ में हमेशा के लिए रह गई और भिक्षा भी क्या पेट-भर मिलती थी? कुल मिलाकर दो मुट्ठी भिक्षा ही उसको मिलती थी - चाहे दो गांव घूमे चाहे दस। राघोपन्त की झोली में नियम से उतनी ही भिक्षा पड़ती थी। कभी-कभी राघोपन्त बीमार पड़ जाता, तो जो नियम से उसे भिक्षा देने वाले थे, वे घर आकर दो मुट्ठी सीधा दे जाते थे। इसलिए उनको कभी कोरा उपवास नहीं करना पड़ा। त्रिवेणीबाई उस दो मुट्ठी अन्न को पीसकर दो रोटी बनाती थी - एक पति को देती, एक स्वयं खाती थी। दरवाजे पर उगी अरबी, भिंडी, केणी और कुरडू की जंगली भाजी और हरी मिर्च वे रोटी के साथ लगाकर खाते थे। बेचारी त्रिवेणीबाई कहीं जाकर पीसे, दाई का काम करे, कमाई करे, तो उसके लिए भी उसको अवसर नहीं मिलता था। क्योंकि बच्चा नहीं था, इसलिए लोगों को लगता

था कि वह कोई टोना-टोटका न करे। कहीं वह बच्चों पर जादू न चला दे, हनुमान मन्दिर में जाकर तोड़-फोड़ की धमकी न दे। उसको सुहागिन के निमन्त्रण पर भी कोई नहीं बुलाता था। ब्राह्मण और कुणबी सब उससे दूर से व्यवहार करते। बोलना भी टालते थे। उसकी बड़ी जेठानी बड़ी शेखीवाली थी। बच्चों की तीखी बातों से त्रिवेणीबाई का मन घायल हो जाता था। पर बेचारी कर ही क्या सकती थी। अपने ही में दोष था, तो दूसरों को क्या बोले? दूसरी कोई औरत होती, तो कुत्ते-बिल्ली को ही प्यार से पालती। पर वह कुत्ते- बिल्ली के लिए एक टुकड़ा रोटी कहां से लाए?

ऐसे ही विवाह के बारह वर्ष बीत जाने पर एक दिन त्रिवेणीबाई ने स्वप्न में देखा कि वह समुद्र के बलुए किनारे पर चल रही है। इतने में उसके कानों में आवाज आती है - "मां, मैं आऊं ? मां, मैं आऊं ?" ऐसा किसी ने कहा। अगल-बगल में कहीं एक चिड़िया-तितली भी नहीं दिखाई देती थी। तो यह कौन बच्चा मां को पुकार रहा है? न कहीं मां दिखाई देती है, न बच्चा। कहीं कोई भूत तो नहीं पुकार रहा है? त्रिवणीबाई के शरीर से पसीना बहने लगा। तीन बार पुकार सुनकर उसको कुछ धैर्य हुआ। "मां, मैं आऊं ?" इस शब्द का जैसे जप चल रहा था। त्रिवेणीबाई के शरीर में आनन्द की लहर जैसी आ गई, "आओ, मेरे बच्चे !" उसने भरे गले से कहा।

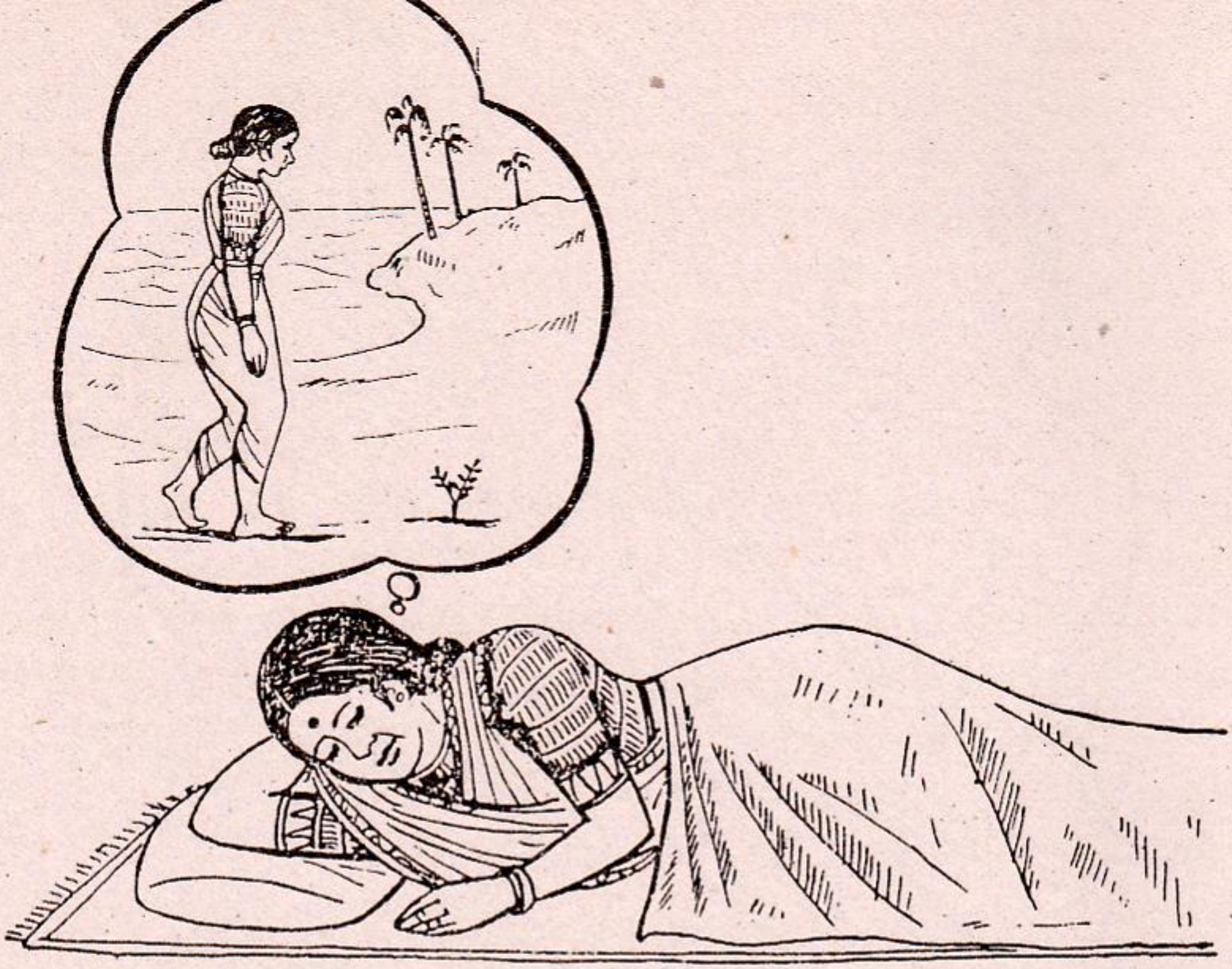

उस बलुए रास्ते में एक छोटा-सा पेड़ उगा हुआ था। काला-सांवला, नाजुक छोटा-सा पेड़। त्रिवेणीबाई को आश्चर्य हुआ और गहरी निराशा से वह रोने लगी। बच्चा कहां है? रोने से त्रिवणीबाई जाग गई। उसकी आंखे गीली हो गई थी। स्वप्न में भी उसे अपना बच्चा दिखाई नहीं दिया। इससे जागने पर उसे और भी बुरा लगा।

पर उस स्वप्न का शकुन सत्य हुआ। त्रिवेणीबाई को बच्चा होने को हुआ। राघोपन्त की मुरझाई हुई आशा पल्लवित होने लगी। विवाह के बारह वर्ष बाद अब आशा की नई कोंपल फूटी। जोड़े को जिमाने के लिए बुलाना होगा। मुझको पुत्र होगा, तो वह सिर पर पगडी बांधेगा। विद्वान होकर धन कमाकर घर लाएगा। काशी के पंडितों में नाम पैदा करेगा। ऐसा ही स्वप्न राघोपन्त भी देखने लगा। "महेश्वरभट्ट का पिता राघोभट्ट कह कर लोग मेरा आदर करेंगे।"

ऐसा ही वह अपने मन में ख्याली पुलाव पकाने लगा।

त्रिवेणीबाई के मन में भी यही आशा थी।

पर राघोपन्त को तो विधाता ही वाम था। त्रिवेणी ने कन्या को जन्म दिया। लड़की पैदा हुई, ठीक है। पर क्या जन्म लेकर अपनी मां के प्राण लेगी? राघोपन्त ठंडी आहें भरने लगा। निपूता होना अच्छा है, पर लड़की का बाप होना अच्छा नहीं। हुंडी नगदी (विवाह में दी जाने वाली रकम) का ढेर देना पड़ेगा।

उसका सिर चकराने लगा।

पत्नी की तबीयत की उसे चिन्ता लगने लगी। चलो, लड़की ही हुई पर वह भी बाप जैसी गोरी होती, तो ठीक था। वह तो एकदम सांवले रंग की हुई। केवल उसकी आंखें बड़ी-बड़ी थीं और मधु के जैसी मोहक रंग की लड़की को देखकर त्रिवेणीबाई हंसी भी और रोई भी।

राघोपन्त के लड़की पैदा हुई, पर बच्चा होने का आनन्द दोनों में से किसी के मुख पर दिखाई नहीं देता था। मां के चेहरे पर जो बीच-बीच में कभी फीकी मुस्कराहट दिखलाई देती थी, उसमें भी वेदना की कसक रहती थी। त्रिवेणीबाई को ज्वर आया। दवा-पानी करने वाला कोई भी नहीं था। वह आधी रह गई। उसके प्राण बचे, यही बड़ी बात थी। वह किसी तरह उठी और टेढ़ी कमर से घर का काम करने लगी। ऐसी स्थिति में लड़की की बरही (जन्म के बारहवें दिन स्नान) कौन करे? और कौन उसे पालने में भी डाले? मसणभट्ट (राघोपन्त) को पालना उधार भी कौन दे?

पर कुछ भी हो, कोई नाम तो उसका रखना पड़ेगा। बारहवें दिन राघोपन्त की बड़ी बहन वारुबाई आई और उसने काली दुबली-पतली लड़की देखी, तो एकदम नाक सिकोडी। भौजाई से उसने उसकी जन्मकुन्डली का पता लगाया, क्योंकि नाम तो राशि पर रखना था। लड़की की राशि तुला निकली। वारुबाई बोली, "जन्मी तो मां का प्राण जैसे लेकर छोड दिया। कन्या तुलसी, फूटी हुई कलसी।" बड़ी जेठानी ने हंसकर सिर हिलाया।

"तुला राशि की तुलसी", कन्या का यह नाम रखकर उसकी बुआ चली गई। बहुत दिनों बाद पैदा होने वाले बच्चों का नाम दगड़ा, घोंड़ा, ठक्कू आदि रख दिया जाता था। उसमें यह तुलसी नाम किसी को अनुचित और विचित्र नहीं लगा। और तुलसी उस झोंपड़ी में अपनी मां की गोदी में बड़ी होने लगी।

तुलसी पैदा हुई, तो राघोपन्त के लिए एक विशेष बात गढ़कर आई। उसको दो मुट्ठी की जगह अब तीन मुट्ठी भिक्षा मिलने लगी। तुलसी अपने भाग्य से खाने लगी। त्रिवेणीवाई कहती, "अपनी लड़की भगवान के घर से अपना मुट्ठी-भर अन्न ले आई है।" और उसने उसको चूमकर धीरे से नीचे रख दिया।

राघोपन्त मुंह टेढ़ा करके कहने लगा, "मुट्ठी-भर ले आई है और सूप (छाज) भरके ले जाएगी, तो वो कहां से ले आऊंगा?"

"मिलेगाा - लड़की के भाग्य से। सब कुछ अच्छा ही होगा।"

त्रिवेणीबाई की तरफ मुंह करके राघोपन्त बोला, "सच बोलूं। पांच वर्ष पूरा होने से पहले कुण्डली नहीं मिलाई जाती। पर मैंने और चिन्तोपन्त ने मिलकर कुण्डली मिलाई, तो मालूम पड़ा कि कभी लड़की की वजह से हम लोगों को अकल्पित धन मिलेगा।"

"क्या हम लोग लड़की का पैसा लेंगे? कुणवी लोग पैसा लेते हैं। हम लोग भला कैसे लेंगे? पर ऐसा नहीं होगा। इसके चरणों के प्रभाव से अपने आप हम लोग सम्पन्न होंगे।"

ऐसी बातचीत दोनों स्त्री-पुरुष बराबर किया करते थे। तुलसी के कान में तो बचपन से इतनी बार यह बातचीत पड़ी थी कि अब तो उसकी आदत पड़ गई थी।

पर राघोपन्त का भाग्य ही खोटा था। तीन मुट्ठी भिक्षा के सिवाय उसे और कुछ मिलता ही न

था। किसी तरह फटा लहंगा पहन कर वह लड़की रहती थी। उसको कभी एक चोली तक पहनने को नहीं मिली। एक तो गांव के ब्राह्मण की लड़की, फिर अपनी चचेरी बहनों को लहंगा-चोली पहने देखकर तुलसी भी चोली पहनने के लिए अपनी मां से जिद करती। और जिद करने पर उसे केवल मार मिलती। "कुणबी की लड़की ऐसी ही उघारी (नंगी) रहती है।"

कभी वह अपने चाचा के घर खेलने जाती थी। वहां की लड़कियां उसे 'उघारी कुणबिन' कहकर चिढ़ाती थीं। वहां पर उसके सब छोटे चचेरे भाई बड़े दुष्ट थे और लाड़ से बिगड़े हुए थे। एक दिन इमली की डंडी से उसकी पीठ पर उसके चचेरे भाइयों ने मारा। 'काली पीठ पर मार का निशान भी नहीं दिखाई देता', ऐसा कहकर दुष्ट लड़के खूब ठठाकर हंसे।

छह वर्ष की वह लड़की कलप कर रो पड़ी और अपमान से दुखित घर आकर अपनी मा के गले में दोनों हाथ डालकर लिपट गई। मां की आंखों से भी आंसू गिरने लगे। एक पुराने घड़े में एक-एक पैसा जोड़कर तुलसी की मां ने एक रुपया जमा किया था। वही रुपया निकालकर वह दुकान पर गई और उसने एक चोली जरा बड़ी सिलवा कर तुलसी को पहना दी।

अबोध तुलसी अपमान भूलकर अपनी चोली गांव-भर को दिखाने लगी।

लड़की जब से पैदा हुई थी, त्रिवेणीबाई को कभी-कभी सुहागिन खाने का निमंत्रण मिल जाता था। उसमें जो दक्षिणा मिलती थी, उसी से पाई-पाई जमा करके उसने तुलसी के विवाह के अवसर पर चोली-चूड़ी इत्यादि देने के लिए पति से छिपाकर जमा किया था।

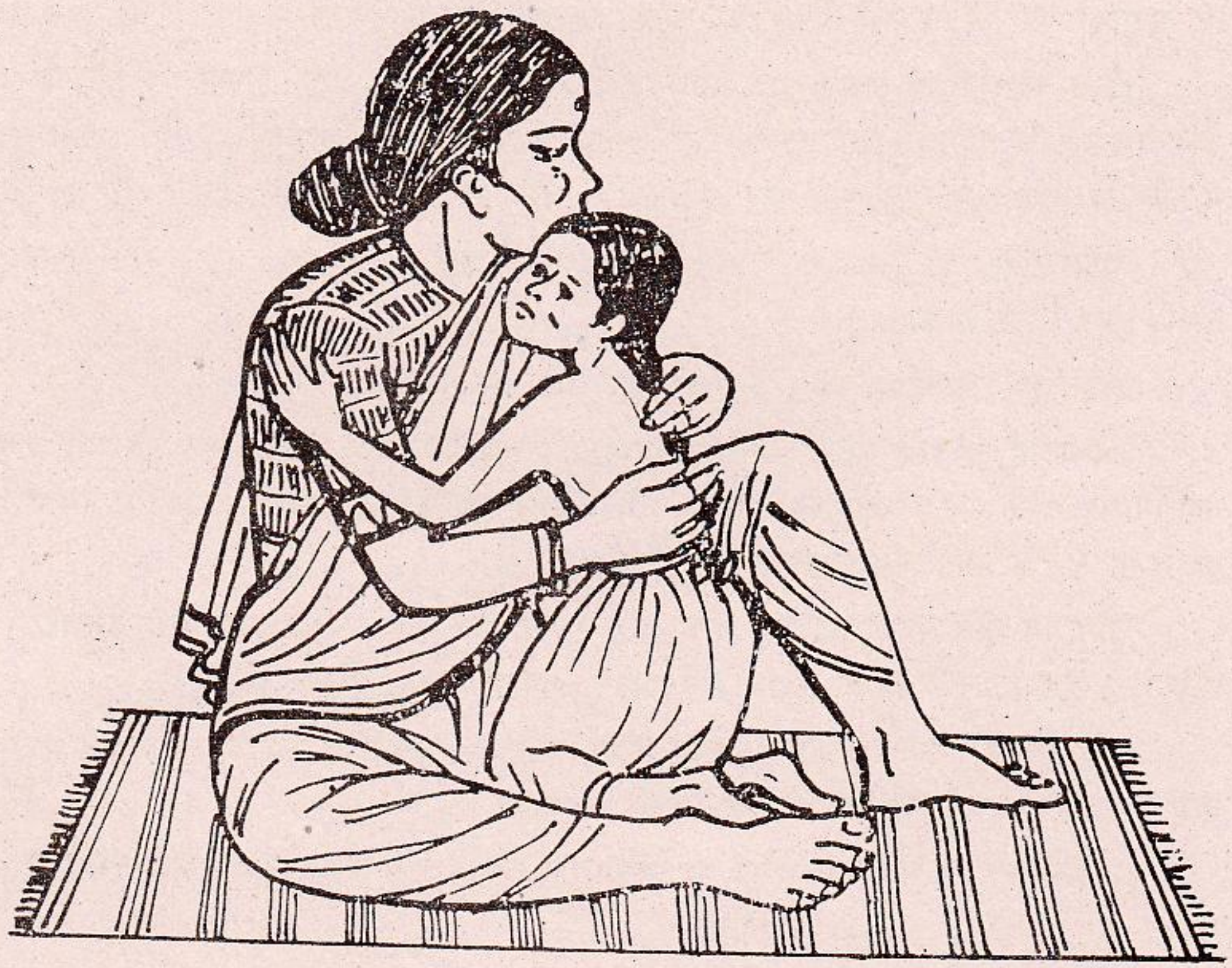

आज वह गुप्त बात खुल गई। राघोपन्त को मालूम पड़ गया। उसने अपनी पत्नी को बहुत टेढ़ी-मेढ़ी बात कही। सारे घर के मिट्टी के बर्तन उसने उलट-पुलटकर देखे कि उसने कहीं और भी तो पैसा नहीं छिपा रखा है और सब बर्तनों को उसने तोड़-फोड़ डाला। ढेर सारी गालियां उसने उसको दीं और हुंडा यानी नगदी खाने वाली तुलसी का उद्धार कर दिया।

पर तुलसी के जीवन में उसी दिन से आनन्द आ गया। एक चोली पहनने से ही उसमें स्वच्छन्दता और खिलाड़ी स्वभाव आ गया। अब उसको लड़कियों के संग खेलने में लज्जा नहीं आती थी। अब वह खेलने जाने लगी। उसके चचेरे भाइयों ने उस दिन शैतानी की थी, इसलिए उसने उनके घर जाना छोड़ दिया। पर दूसरे लड़के लड़कियों को तब से उसके साथ बड़ी सहानुभूति हो गई और वे लोग उसको अपने साथ खिलाने लगें।

तुलसी का मन इससे बहुत प्रसन्न हुआ। घर में भी जो संकोची थी अब वह बाहर जाकर निस्संकोच बच्चों से बातें करने लगी और खेलने तथा पढ़ने लगी। उसके सांवले गालों पर लाली झलकने लगी। जो होंठ उसके हमेशा बन्द रहते थे, अब खुलने-बन्द होने लगे। अब वह होंठ दबाकर बातें करती थी। उसकी आंखें तो पहले से ही बड़ी और सुन्दर थीं। अब उनमें भावना, मृदुलता और संतोष का भाव भी साफ दिखाई देने लगा। उस सांवली, काली, छोटी लड़की का शरीर चेतना से भर गया।

जैसे-जैसे खेल बढ़ा, वैसे-वैसे तुलसी की भूख भी बढ़ गई। अब वह हमेशा भूख-भूख करने लगी। बदले में उसको आते-जाते मार मिलती थी। पर अब वह इसकी जरा भी परवाह नहीं करती थी।

"एक रोटी से मेरा पेट नहीं भरता। मुझे और दे।" वह मां से कहती।

"अब और नहीं है, तो तुझे कहां से दूं?" मां कहती।

बढ़ती हुई लड़की। उसको भूख रोकना नहीं आता था। प्रकृति के विरुद्ध कितनी लड़ाई करे? तुलसी मां से झगड़ा करती। हारकर उसकी मां ने अपनी रोटी में से आधी उसे देना शुरु किया। सारे दिन में तुलसी के लिए डेढ़ रोटी क्या थी? पर उस आधी रोटी से ही तुलसी को शान्ति हुई।

अब वह अपनी मां का कहना बराबर सुनती थी। अनाज दलना, पीसना, पानी भरना - सब करती थी।

पर आधी रोटी की कमी का परिणाम त्रिवेणीबाई के पतले-दुबले शरीर पर अधिकाधिक दिखने लगा। ऐसा लगा कि अब एक-दो वर्ष में वह एकदम खटिया से लग जाएगी।

दिनों-दिन अपनी स्त्री की ऐंसी गिरती अवस्था देखकर राघोपन्त चौंका। उसे चिन्ता हुई। उसने उसका चूल्हे के पास जाना बन्द करा दिया।

अब तुलसी रसोई-पानी सब करती थी। एक दिन राघोपन्त ने अपनी स्त्री से पूछा, "तू ऐसी दुबली-पतली क्यों हुई जा रही है? क्या तू उस कलूटी के विवाह की चिंता में घुल रही है? तुलसी अब दस वर्ष की हो गई है। लोग मुझे बदनाम करते हैं।। किसी को मुंह न दिखाऊं, ऐसा लगता है। सुन, जाने दे उसको भी। तू मुझे सच बता। तेरी ऐसी अवस्था कैसे हुई?"

पति ने कभी उससे ऐसे प्रेम से बात नहीं की थी। इसलिए त्रिवेणीबाई का गला भर आया। मन

में जो नहीं था, वह भी वह बोल गई, "दुबली न होऊं, तो क्या? घर में तीन मुट्ठी के सिवाय एक दाना भी दिखाई नहीं देता। न खेत है, न भात। आज दो वर्ष से मैं आधी रोटी खा कर रहती हूं। तुलसी को डेढ़ रोटी चाहिए।"

राघोपन्त बोला, "जब से हमारा विवाह हुआ, तब से लेकर आज तक मैं एक रोटी खाता हूं। यह कौन अप्सरा है जो इसे डेढ़ रोटी चाहिए? सच बात तो यह है कि इसे आधी रोटी देकर मुझे डेढ़ रोटी खानी चाहिए? यह लड़की नहीं, हम लोगों के गले के लिए यमराज की रस्सी का फन्दा है। हम लोग चाहे कितना करें, पर यह हमारा सत्यानाश करके तभी पति के घर जाएगी। पर विवाह करके जाएगी भी कहां! कद में नाटी, रंग में काली। कौन विवाह करके ले जाएगा इसे? विधुर तक नाक सिकोड़ते हैं। लगता है, इसे कुणबी को ही देना होगा। इसके भाग्य में ब्राह्मण पति नहीं है। यह चिन्तोपन्त ने मुझसे कहा था। और देखना, यह पत्थर मैं कहां तक अपनी छाती पर रखकर दलूं। मर जाए, तो अच्छा। पर मरेगी भी कैसे। कुएं में ढकेलने से भी लौट आएगी। अच्छा जाने दे। कुछ भी हो। पर तू आज से डेढ़ रोटी खा। कलूटी मर जाएगी तो अच्छा होगा। पर तू जाएगी, तो मेरी दुनिया चली जाएगी। मेरे प्राण निकल जाएंगे।"

ऐसा कहते-कहते राघोपन्त की आंखों से आंसू गिरने लगे। उसने प्रेम से त्रिवेणीबाई का दुर्बल हाथ थामकर कहा, "अरे, देख। स्त्री-पुरुष की जोड़ी - यही जीवन का सबसे बड़ा सुख है। बाकी सब लोग व्यर्थ हैं। तू मेरी सुन। तू आज से अपना ध्यान रख। मैं तेरे बिना जीवित नहीं रह सकता।"

त्रिवेणीबाई को लगा जैसे उसके शरीर पर अमृत की वर्षा हुई हो। इतने दिनों में आज ही उसने पति के मुख से ऐसे प्रेम-भरे कोमल शब्द सुने थे। उसे अन्तःकरण में प्रतीत हुआ कि इतने दिनों तक जो कुछ कष्ट उसने गृहस्थ जीवन में उठाया, वह सार्थक हो गया। उसका मन हर्ष से भर गया। राघोपन्त ने जो तुलसी का भयंकर भविष्य उसे सुनाया था, वह भी वह भूल गई। अभी तक उसने जो-जो कष्ट उठाए थे, उसकी सब कीमत उसको राघोपन्त के प्रेम-भरे कोमल शब्दों में मिल गई। तुलसी भी दृष्टि की ओट हो गई। सारी दुनिया नजर के सामने से हट गई। रह गया सामने केवल उसका पति और यही एक सत्य उसे मालूम पड़ने लगा। त्रिवेणीबाई न हंस सकती, न रो सकती, न बोल सकती थी।

थोड़ी देर में राघोपन्त ने उससे कहा, "देख, मोह में पड़कर तू अपनी दुनिया मत बिगाड़। मैं आज तुलसी को जंगल में छोड़ आता हूं। बाघ, लोमड़ी खा जाएंगे, तो अच्छा होगा। नहीं तो, जाने दो। मैं क्यों बोलूं? जो कुछ भी हो, हम लोगों की नजर की ओट में जो होना हो, वह हो।"

जैसे बिजली अंक में गिरी हो, ऐसा ही त्रिवेणीबाई को प्रतीत हुआ। जैसे गूंगी अवस्था से अब उसमें बोलने की शक्ति आई हो, इस प्रकार कठिनता से वह बोली, "नहीं, नहीं, उसको मत छोड़ो। उसकी वजह से मेरा बांझपन चला गया। नहीं तो सब लोग मुझे डाकिन (डाइन) कहते थे। मत छोड़ो उसे। रहने दो यहां उसको।"

पर राघोपन्त ने उत्तर नहीं दिया। उसने टकटकी लगाकर अपनी स्त्री की ओर देखा। उसकी दृष्टि में निश्चय था, एक क्रूरता थी। राघोपन्त की वह नजर त्रिवेणीबाई को शैतानी दृष्टि जैसी लगी और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर गई।

जंगल में तुलसी

राघोपन्त त्रिवेणीबाई को उसी बेसुध हालत में छोड़कर शान्ति की सांस लेकर बाहर निकला। सवेरे का समय था। तुलसी उसी समय स्नान करके घर आई थी। कमर पर घड़ा रखे हुए थी और उस सद्यःस्नाता (अभी-अभी नहाकर आई) के काले सुन्दर खुले हुए केश घुटने को छू रहे थे। उनमें से

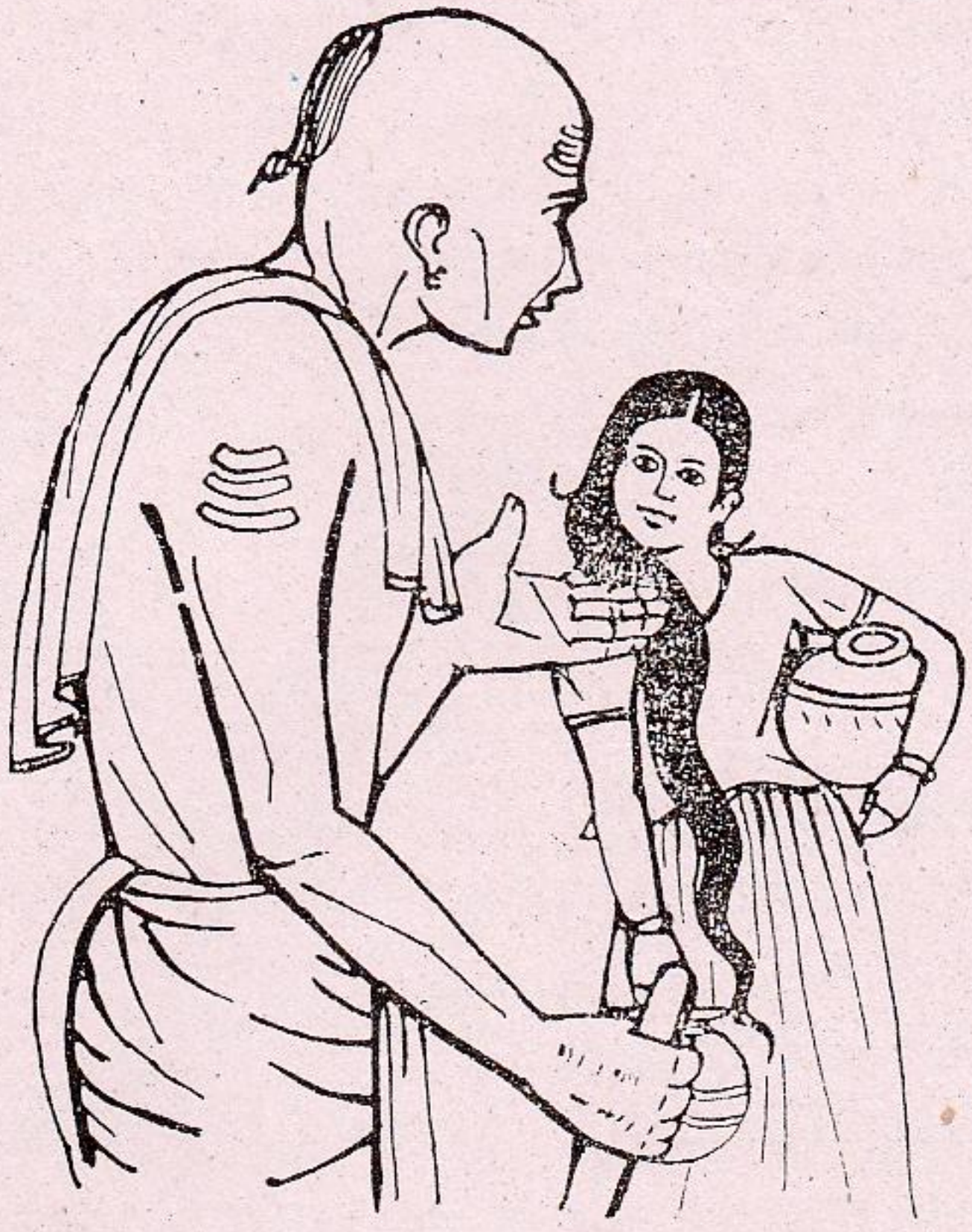

पानी की बूंदें निचुड़ रही थीं। तुलसी ने जमीन पर घड़ा रखा और गीले बालों का जूड़ा बांधा। कितना बड़ा और डौलदार था - जैसे दूसरा सिर ही हो। तुलसी का सारा सौंदर्य इन केशों में ही सिमट गया था।

तुलसी चूल्हे के पास बैठ ही रही थी कि इतने में राघोपन्त ने उससे कहा, "तुलसी, तू आज रसोई मत कर। मेरे साथ बाहर चल। जरा लकड़ी बांधकर घर लाना। मुझे गांव से बाहर जाना है। तेरी मां रसोई करेगी। इतना तू आज मेरा काम कर।"

तुलसी झट से उठ गई। वहीं से बोली, "मां! मैं जा रही हूं। तू जरा चूल्हे का ध्यान रखना।" ऐसा कहते हुए वह घर के बाहर चली गई।

पिता से उसको हमेशा डर लगता था। वह कभी तुलसी से बात भी नहीं करता था। पर आज राघोपन्त अपने मन से ही बीच-बीच में उससे बातें करता जाता था।

यही तुलसी को नई बात लगी। उसको आनन्द हुआ।

"पिताजी ऐसे ही हमेशा रहें तो कितना अच्छा है। मेरे पिताजी ममतावान हैं। पर गरीबी ने उनको ऐसा बना दिया है।" ऐसा विचार करती-करती वह चलने लगी।

गांव पीछे छूट गया था। हरे-पीले लम्बे-चौड़े खेत के टुकड़े भी पीछे छूट गए। वहां के आदमी भी बिंदु के समान दिखाई पड़ने लगे थे। कभी तुलसी (अपने पिता के साथ) टेकरी के साथ ऊपर चढ़ती, कभी नीचे उतरती। उतराई से फिर ऊंचे चढ़ती।

ऐसा करते-करते झाड़ियों से होकर निकलने वाले रास्ते में से मार्ग बनाकर दोनों जल्दी-जल्दी चल रहे थे। पेड़ों से गिरी हुई सूखी पत्तियां पैर के स्पर्श से कुर-कुर कर रही थीं। उनके बीच से जीव-जन्तु इधर-उधर रेंग कर आ जाते थे। गिरगिट भी चुक-चुक आवाज कर रहा था।

मारे डर के तुलसी का कलेजा धक्-धक् करने लगा। उसने बाप का हाथ पकड़ लिया। बाप ने भी हाथ नहीं छुड़ाया।

धीरे-धीरे दोनों एक छोटे-से पोखर के पास पहुंचे। उस समय सूर्य तप रहा था। पर कहीं-कहीं किरणों के न पहुंचने से प्रकाश धूमिल-सा दिखाई पड़ रहा था। यह बाघ के पानी पीने की पानथली थी।

राघोपन्त वहां पहुंचकर रुका। बोला, "बैठ इधर। कितना चलेगी तू? मैं दूसरी ओर गांव में जाकर भिक्षा ले आता हूं और लकड़ी काटता हूं। मेरी कुल्हाड़ी की आवाज पेड़ पर सुनकर तू मेरे पास आना। तब लकड़ी का बोझा बांधना।"

तुलसी "अच्छा" कहकर वहीं बैठी रही।

झरने का पानी स्वच्छ था और कलकल कर रहा था। तुलसी ने अपना पैर पानी में डाला और अंजलि भर-भर के पानी पिया। उसने अपना जूड़ा खोल दिया और बालों को पीठ पर खुला छोड़कर गुनगुनाती हुई कुछ देर बैठी रही। उसके पिता के पैरों की आवाज, जो क्रमशः धीमी होती उसे सुनाई दे रही थी, थोड़ी देर में बिल्कुल बन्द हो गई।

धीरे-धीरे दिन बीतने लगा। मारे भूख के उसके पेट में कहर उठने लगा। वह पिता की राह देखने लगी। कुल्हाडी की आवाज सुनने के लिए उसने कान खड़े किए। पर कुछ सुनाई न दिया। वह इधर-उधर

देखने लगी। उसने सोचा, "उस तरफ जाकर देखूं। पर यदि रास्ता भूल गई तो? जंगल में मुझको कौन रास्ता दिखाएगा।"

ऐसा विचार मन में आने के कारण वह वहीं बैठी रही। दोपहर बीत गई। शाम का समय आ गया। धीरे-धीरे जंगल में अंधेरा छाने लगा। चमगादड़ अपने पंख फड़फड़ाने लगे। तब तुलसी को मालूम पड़ने लगा कि पिता ने मुझे एकदम यहां छोड़कर फंसा दिया है, घर के बाहर निकाल दिया है और नगदी पैसा (हुंडी) देने की चिन्ता मिटाई है।

वह रोने लगी। "रात जंगल में कैसे बिताऊं ? बाघ खा जाएगा मुझको। लोमड़ी फाड़ डालेगी। बन्दर, भूत-प्रेत नोचेंगे। डाकिन खींचेगी तो क्या करूंगी? बाप ने छोड़ दिया है। हवा झकझोरेगी। पानी भिगोएगा। मैं अब अपनी फरियाद किसके पास ले जाऊं ?"

तुलसी उठ गई। रोते-कलपते, गिरते-पड़ते जो रास्ता दिखाई देता था, वह उसी रास्ते पर दौड़ने लगी। उसको लगने लगा जैसे सारा जंगल निगलने लगा है। पेड़ की डालियां उसे पकड़ रही हैं। कांटे उसके बाल नोचने लगे हैं। पत्थर ठोकर मार रहे हैं।

उसके सिर पर रात वाले पक्षी मंडराने लगे। किसी तरह अपने बालों को लपेट-लपूटकर, जूड़ा बांधकर दोनों हाथों को ऊपर करके तुलसी अपने प्राण लेकर भागने लगी। उसके बाल जूड़े से खुलकर इधर-उधर पेड़ों में अटकने लगे।

तुलसी जल्दी-जल्दी भागती हुई चलने लगी। उसके चलने की जो धप्प-धप्प आवाज आती थी, उससे उसको ऐसा मालूम पड़ता था जैसे पीछे से कोई उसे पकड़ने आ रहा हो।

इसी तरह उसे बहुत दूर पर एक क्षीण प्रकाश दिखाई पड़ने लगा। उस प्रकाश को पकड़ने के लिए तुलसी उसी ओर जोर से दौड़ने लगी। अब दूर से दिखाई देने वाला प्रकाश पास आने लगा और उसकी रोशनी उसके शरीर पर भी पड़ने लगी।

जंगल समाप्त हो गया था। खेत पर डूबते हुए सूर्य की एकदम हल्की धूप पड़ रही थी। हवा ठंडी थी। खेतों के बीच की पगडंडी को पकड़कर तुलसी चलने लगी। दूर पर एक गांव दिखाई दे रहा था। चूल्हों से निकला धुआं झोपड़ियों के बाहर निकलकर गांव के चारों ओर फैल रहा था। पकते हुए अन्न की सोंधी गंध मानो तुलसी को 'आओ' 'आओ', कहकर बुला रही थी।

सवेरे से निकली, भूख से व्याकुल तुलसी को धुएं का दर्शन भगवान के दर्शन जैसा मालूम हुआ। रास्ते के मोड़ पर एक बूढ़ी किसान स्त्री कुछ खड़-खड़ करती हुई काम कर रही थी। आसपास सिवाय उसके कोई नहीं था। वह पके हुए, काटे अन्न का बोझ बांध रही थी।

बुढ़िया को देखकर तुलसी को धैर्य हुआ। वह खेत में घुसी और बुढ़िया के पास गई। इतने में चन्द्रोदय हुआ। पूर्णिमा का चन्द्र उदय हो रहा था। पश्चिम में सूर्य का बिम्ब ओझल हो गया था। डूबते हुए सूर्य और उगते हुए चन्द्र को एक क्षण के लिए काम रोककर बुढ़िया ने प्रणाम किया। कुछ मुंह से बुदबुदाती हुई वह फिर से काम में लगने को हुई, त्योही उसे धूल से भरी हुई अस्त-व्यस्त, खुले बालों वाली दीन मुद्रा में खड़ी हुई तुलसी दिखाई पड़ी।

"कौन है यह ? भूत तो नहीं ?"

"दादी मां ! क्या तुम मुझको अपने पास ठहराओगी ? आज रात-भर रहने दो, मैं कहां जाऊं? ? मेरे पेट में सवेरे से अन्न का एक दाना भी नहीं गया है। थोड़ा-सा खाना खाने को मुझे दो न।"

"अच्छा, अच्छा। बोलती है, मुझे खाने-पीने को दो। कौन हैं तू ?"

"मैं बाह्मण की लड़की हूं। मेरा नाम तुलसी है। घर में खाने को नहीं है। विवाह के लिए दहेज की रकम नहीं है। इसलिए बाप ने जंगल में छोड़ दिया, दादी मां ! दया करो, रात भर रहने दो, बस।"

"हां, हां, बड़ी आई ब्राह्मण की लड़की। बोलती है, जंगल में छोड़ दिया। ब्राह्मणों का हृदय ही ऐसा कठोर होता है। पर ब्राह्मणों की लड़कियां तो गोरी-गारी होती हैं। तू तो कुणबी जैसी दिखाई देती है। अगर ब्राह्मण की लड़की तू हो भी, तो मेरे किस काम की? न खेती के काम की, न बोझा उठा

के ले आने के काम की? मैं किसी को फोकट का खाना नहीं देती हूं। चली जा यहां से। बड़ी आई ब्राह्मण की लड़की। मुफ्त में खाने वाली। भीख ही मांग तू।"

बुढ़िया के ऐसे निर्दय शब्द सुनते ही तुलसी के पैरों तले से मानो जमीन सरक गई। किसी तरह गिरते-पड़ते वह खेत के बाहर निकली। अब उसकी इच्छा गांव की ओर भी जाने की न रही। सोचने लगी, "जाऊं, फिर जंगल में ही। अपने शरीर का मांस बाघ-लोमड़ी, सांप-कुत्ते को ही दूं। कम से कम उनकी तो भूख भाग जाएगी।"

ऐसा विचार मन में आते ही तुलसी फिरकर जंगल के रास्ते की ओर चलने लगी।

ठंड जोर से पड़ रही थी। डर से पेट में गोले उठने लगे। मां की गोद में सो जाऊं, ऐसा उस लड़की के मन में आया। जंगल में और अन्दर जाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। उसकी शक्ति समाप्त हो गई थी। एक चट्टान पर बैठकर वह मुक्त कंठ से रोने लगी। उसके खुले वाल आगे-पीछे पीठ पर, जमीन पर चारों तरफ फहरा रहे थे। ऐसा लगता था, जैसे शाल वनकर तुलसी की ठंड से रक्षा कर रहे हों। तुलसी घुटने में मुंह छिपाकर रोती ही रही।

चन्द्रमा अव धीरे-धीरे ऊपर आ रहा था। उसका तांवे जैसा पीला रंग जाकर अव मोती जैसा सफेद हो गया था। पृथ्वी चन्द्रमा की किरणों से स्नान कर रही थी। चारों ओर फैले हुए शांत वातावरण में केवल तुलसी के सिसकने की आवाज ही गूंज रही थी।

राणा विठोबा से भेंट

पंढरपुर का राणा विठोबा आज चांदनी रात में घूमने निकला था। पूर्णिमा की रात थी। चारों ओर पके हुए अन्न काटने की तैयारी हो रही थी। शाक-भाजी से खेतों की जमीन हरी-भरी हो रही थी।

ऐसी समृद्धि की अवस्था में लोग आनन्द क्यों न मनाएं। रात्रि में कहीं-कहीं पर बाजे बज रहे थे। कहीं-कहीं से लेजिम की झनझनाहट की आवाज आ रही थी। गांव-गांव में, चौपाल में, कहीं-कहीं मन्दिर के ओसारे (आंगन) में लोगों के गप्प मारने, बोलने की आवाज आ रही थी। कहीं-कहीं कीर्तन की भीड़ हो रही थी। तमाशाइयों का दल गांव के बाहर गरज रहा था। मन्दिरों में देवदासियां सभामंडप में नृत्य करके देवताओं और रसिकों को प्रसन्न कर रही थीं। हर जगह किसी न किसी प्रकार का कोई उत्सव हो रहा था।

पंढरपुर का विठोबा प्रसन्नता से रुक्मिणी से बोला, "देख, अपने सब लोग कितने आनन्द में हैं। मैं जाकर उन लोगों की प्रसन्नता देखना चाहता हूं। यह भी देखना चाहता हूं कि इस समय भी कोई दीन-दुखी है क्या।"

रुक्मिणी झट से बोली, "सदा से तुम ऐसे ही हो। जाओगे और बैठोगे और व्यर्थ का कष्ट उठाओगे। सुख भोगना भी तुमको नहीं आता। देखो, कितनी अच्छी पैदावार इस साल हुई है। भला कौन क्यों दुखी होगा। कुछ नहीं है, मत जाओ।"

पर विठोबा बोला, "कुछ भी कहो, रुक्मिणी, मुझे ऐसा लगता है कि कहीं कोई रो रहा है। कहीं कोई गाना भी गा रहा हो, तो मुझे उसमें से भी पुकारने की आवाज सुनाई देती है। कोई रो रहा है। मुझे जाने दो, रुक्मिणी! सुनो जरा।"

रुक्मिणी ने कान खोलकर सुनने की चेष्टा की। पर उसे कुछ सुनाई नहीं दिया।

विठोबा उठा। अपनी कामरी (काला कम्बल) कन्धे पर रखी और हाथ में लकड़ी लेकर बाहर निकलकर जल्दी-जल्दी जाने लगा। "इस समय कौन रोता होगा? दरिद्री कोंकण में गरीबी का मारा हुआ कोई अभागा होगा शायद।"

ऐसा सोचता हुआ विठोबा घाट पार करके समुद्र के किनारे आया। आवाज अब धीरे-धीरे पास आने लगी। सारा गांव उत्सव और आनन्द में मग्न था। विठोबा उसी बुढ़िया के गांव के बाहर खेत की ओर चला।

बुढ़िया काम कर रही थी। वह उसके पास आया और बोला, "क्या दादी मां, रात में भी काम कर रही हो? थोड़ा विश्राम करो। थोड़ा आनन्द भी करो।"

"कौन? मरा तू कौन है? कहां का रहने वाला है? हृष्ट-पुष्ट तो दिखाई देता है और काम नहीं करता, क्यों? 'तरणी पडली धरणो आणि म्हातारो झाली हरणी' (जवान हुआ बुड्ढा और बुड्ढा हुआ जवान) मुझको थकावट नहीं आती।"

"हां दादी मां। यह तो सच है, पर इधर पास ही कोई रो रहा है। ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। कौन है? क्या तुमको मालूम है?"

"हां। वह, वह ब्राह्मण की लड़की तुलसी है। बाप ने लाकर जंगल में छोड़ दिया। मेरे पास आई, कहने लगी, मुझे घर में रखो। पर मैंने भगा दिया। ब्राह्मण की लड़की तो बैठी हुई कलशी के समान

(बिना काम की) है। मेरे किस काम की। मैं न किसी से कुछ लेती हूं, न किसी को कुछ देती हूं।"

"अरे बुढ़िया! तू तो बड़ी मतलबी है। अगर तू उस गरीब लड़की को रख ही लेती, तो क्या बिगड़ता तेरा? जा, तेरे घर में आज से रोज केवल मुट्ठी-भर दाना ही निकलेगा और मुट्ठी-भर तरकारी-भाजी पैदा होगी। बस, केवल तेरा घर मात्र रह जाएगा।"

बुढ़िया को डर लगा और उसने देखा कि हजारों टिड्डियों का दल आया और सब खेत खाकर चला गया। मुट्ठी-भर दाना निकल सके, इतना ही अन्न बाकी रह गया। टिड्डियों का दल जैसे आया, वैसे ही चला गया। बाकी खेती मजे में खड़ी रही।

शोक और क्रोध से चिल्लाती हुई बुढ़िया वहां से चली गई।

विठोबा जल्दी-जल्दी आगे गया। चट्टान पर बैठी हुई तुलसी उसको दिखाई दी।

विठोबा ने उसकी पीठ पर जाकर हाथ फेरा। उसके बाल ठीक से पीछे किए। अपनी कामरी उसकी पीठ पर ओढ़ा दी और उसकी आंखें पोंछते हुए कहा, "लड़की, तू कौन है?"

तुलसी बोली, "मैं राघोभट्ट की लड़की हूं। मेरे पिता दैव से भाग्य के फूटे हुए हैं। मर-मरकर मेहनत करते हैं। तब भी तीन प्राणियों का पेट नहीं भरता। मेरा पालना उनको बहुत कठिन लगा और उन्होंने मुझे लाकर जंगल में छोड़ दिया। विवाह में देने के लिए नगदी की चिन्ता से उनका माथा चकरा गया है। मैं कहां जाऊं, कुछ सूझता नहीं है।" ऐसा कह कर तुलसी फिर रोने लगी।

"रो मत, तुलसी। मैं पंढरपुर का विठोबा हूं। मैं तुझको दुख में नहीं छोड़ूंगा। मेरे साथ चलेगी?"

"कहां? पंढरपुर को?"

किंचित विचार करके विठोबा ने कहा, "नहीं, यहीं पास ही।" तुलसी बोली, "चलो।"

उसका हाथ पकड़कर विठोबा चलने लगा। तुलसी बहुत थकी हुई थी। विठोबा ने उसे उठा लिया। उसके कन्धे पर सिर रखते ही तुलसी सो गई। विठोबा हंसने लगा।

तुलसी का घर

जब तुलसी की आंख खुली, तो उसने देखा कि धूप चारों ओर फैल गई है और वह मुलायम गद्दी पर लेटी हुई है। उसका लहंगा ऊंची कीमत का था और वैसी ही चोली भी थी। गले में पोत (बारीक मनकों की माला) पहने थी। कानों में तरकी (कुण्डल) थी। हाथ में चूड़ियां थीं। बालों को अच्छी तरह से साफ करके चोटी की गई थी।

तुलसी उठ गई। सब उसको स्वप्न जैसा लगा। हंसते हुए विठोबा बोला, "तुलसी उठकर देख तो। कैसा मजा है यहां।"

"यह क्या तुम्हारा पंढरपुर का घर है?"

"नहीं, तुलसी! यह तेरा और मेरा घर है। विठोबा ग्वाले ने तुलसी के लिए यह घर बनाया है।"

तुलसी ने इधर-उधर नज़र घुमाकर देखा। छोटा-सा, झोंपड़ी-जैसा घर था। चार दरवाजे थे। चारों में खूब मजबूत सिकड़ी (कुंडा) लगा था। एक छोटा-सा आंगन भी था। झोंपड़ी के दूसरी ओर छोटी-सी नदी कल-कल करके बहती थी।

तुलसी प्रसन्न होकर बोली, "मेरी मां यहां होती; तो यह घर देखकर कितनी खुश होती। मेरा घर।"

"नहीं तुलसी! तेरी मां तेरा मुंह भी देखने वाली नहीं है। उसको बुलाने का विचार तू छोड़ दे। पगली, ग्वाले-चरवाहों के यहां ब्राह्मण नहीं आते। तुलसी, विठोबा ग्वाले के सिवाय तुझे कोई नहीं पूछेगा।"

तुलसी की आंखों में आंसू आ गए। "हां, मैं घर से निकाली हुई हूं। मेरे मां-बाप भी नहीं है। पति भी नहीं मिलेगा। सत्य ही तुम्हारे सिवाय मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है।"

"तुलसी, तू मुझे बहुत अच्छी लगती है। तेरी आंखों जैसी आंखें, केश जैसे केश मैंने कभी नहीं देखे। चिन्ता छोड़ दे। मेरे घर रह। कोई तुझे दुख नहीं देगा। विवाह की चिन्ता छोड़ दे। तुलसी, तू बड़ी हो जा। मैं ही तेरे साथ विवाह करूंगा। पर तुझे क्या अच्छा लगेगा?"

दस वर्ष की छोटी उमर वाली, दुखों से पकी हुई लड़की ने हंसकर सिर नीचे झुका लिया।

विठोबा कहने लगा, "तुलसी विवाह हुआ कि मैं तुझे पंढरपुर ले जाऊंगा। तब तक तू इधर ही रह।"

तुलसी ने अभी तक मुंह भी नहीं धोया था। अब वह झटपट उठ गई। कल सारा दिन उपवास

करने के बावजूद आज उसको पेट भरा हुआ मालूम पड़ रहा था।

विठोबा तो पंढरपुर का ही था। उसने सब कोठी-घर अन्न से भर दिया था। ज्वार भी खूब भरा था। तुलसी ने सूप भरकर चना निकाला और पीसने लगी। कोंकण का लाल चावल भी बहुत भरा हुआ था। तुलसी ने खाना बनाया और फिर नदी पर जाकर पानी ले आई।

विठोबा उसके साथ पीसने लगा। पानी भी भरने लगा। तुलसी का कपड़ा धोकर उसने धूप में सूखने को डाला। तुलसी ने रसोई की। विठोबा खूब मुंह चलाकर (चपर-चपरकर) खाने लगा।

विठोबा तुलसी के संग सागर गोटी खेलता था। कभी-कभी उसके दोनों हाथ पकड़कर घुमरी खेलता था। रात में तरह-तरह की मजे की बातें सुनाता था - कभी पंढरपुर की, कभी राधा की, कभी रुक्मिणी की। और भी बहुत-बहुत। रुक्मिणी के संग अपने विवाह की बात तो वह इतने मजे से बताता कि तुलसी उस बात को सुनकर एकदम प्रसन्न हो जाती थी।

इसी तरह सात-आठ महीने बीत गए। तुलसी अच्छा खाना-पीना मिलने से काफी बड़ी दिखने लगी थी। उसके गाल भर आए थे। बाहें खूब गोल-गोल सुडौल हो गई थीं। अब वह साड़ी पहनने लग गई थी। उसके शरीर पर दो-चार ही गहने थे, पर खूब ठोस थे।

एक दिन विठोबा कहीं से एक छोटा-सा बिल्ली का बच्चा ले आया और तुलसी से बोला, "इसकी मां इसे छोड़कर चली गई है। रोता था। मैं ले आया कि तुमको एक साथी होने से प्रसन्नता होगी।"

तुलसी ने उस बच्चे को हाथ में उठा लिया। वह बच्चा एकदम शुभ्र श्वेत था। आंखें हरी और नीली थीं। शरीर एकदम मुलायम था। कितना स्वच्छ और सुन्दर था वह बच्चा!

तुलसी ने उसको दूध-भात दिया। वह एकदम खा-पीकर तृप्त हो गया और दिनों-दिन शैतानी करने लगा।

एक दिन विठोबा ने उससे कहा, "तुलसी, मैं कल पंढरपुर जाऊंगा। तुझको अकेला न लगे, इसलिए यह बिल्ली का बच्चा ले आया हूं। मैं यहां हमेशा तो नहीं रह सकता। रुक्मिणी मेरी राह देखती होगी। रोती होगी। मैं आऊंगा, जल्दी ही आऊंगा और तुरन्त तुझसे विवाह कर तुझे ले जाऊंगा। हां! और वह काली पोत तेरे गले में है न। उसे वैसे ही रहने देना। फिर कोई तुझे कष्ट नहीं देगा। बिना काम के कहीं मत जाना और किसी के झगड़े में मत पड़ना। रात को पीछे का दरवाजा मत खोलना। मैं आऊं, तब भी मत खोलना।"

तुलसी चुपचाप खड़ी रही। उसका मुंह एकदम सूख गया। फिर वह वही राघोभट्ट वाली तुलसी हो गई।

"मैं जल्दी ही लौटकर आऊंगा। तू रो मत, तुलसी। बोल, आते हुए तेरे लिए क्या ले आऊं?"

"जो तुम्हारी इच्छा हो, ले आना।"

विठोबा ने दूसरे दिन सवेरे बड़े तड़के ही अपनी कामरी और लकड़ी ली और पंढरपुर के लिए चल पड़ा।

रुक्मिणी की करनी

विठोबा पंढरपुर गया और तुलसी एकदम गम्भीर दिखने लगी।

बिल्ली उसके पास थी। यही अच्छा था। नहीं तो मालूम नहीं वह क्या कर बैठती। केवल अपने लिए रसोई करने की उसकी इच्छा नहीं होती थी। पर बिल्ली के लिए उसे ताजा भात बनाना पड़ता था उसी में से वह भी थोड़ा-सा खा लेती थी।

उठते-बैठते वह बिल्ली को अपने पास ही लेकर बैठी रहती थी।

विठोबा के जाते ही सारा जग ही पलट गया। नदी पर आने वाली स्त्रियां अब उसकी हंसी उड़ाया करती थीं।

"ग्वाले से विवाह करने वाली यह ब्राह्मणी है।" ऐसा कहकर लड़के-बच्चे उसकी निन्दा करते थे।

पर तुलसी को उसका कुछ अच्छा-बुरा नहीं लगता था। विठोबा की हंसी-मसखरी और चुहल याद करके वह सब कुछ भूल सकती थी। घर में अन्न भरा था ही। रहने के लिए सिर के ऊपर छत भी थी। बिल्ली का साथ था। उसके मन में विठोबा के लौटने की रट लगी हुई थी।

आंगन में छोटे-मोटे पेड़-पौधे थे। तुलसी उनकी सेवा करती। आगे पंढरपुर जाते समय घर के फूलों का गजरा और अपने हाथ की कसीदा की हुई चोली वह रुक्मिणी के लिए ले जाने वाली थी। इससे दिन-भर वह कसीदा काढ़ती रहती।

x x x

और विठोबा?

वह पंढरपुर गया, तो सारा पंढरपुर उससे मिलने के लिए आया। रुक्मिणी रूठ कर बैठी थी। उसने पूछा, "इतने महीने तुम कहां थे?"

"मैं, मैंने एक ब्राह्मण की दस वर्ष की लड़की को, जिसके बाप ने उसे जंगल में छोड़ दिया था, घर बनाकर दे दिया है। बड़ी अच्छी लड़की है। तुमको बहुत पसन्द आएगी। उसका नाम तुलसी है।"

"हां। हां। अरे, मैं क्या सुन रही हूं? तुम लोगों का क्या भरोसा। मैं क्या तुमको आज से जानती हूं। मेरी अपेक्षा तुमको हमेशा दूसरे की चिन्ता पड़ी रहती है। हां। मैं स्वयं बातचीत करके तुम्हारे गले पड़ गई हूं न। ग्वाले की जात ही झूठी होती है।"

"रूक्मिणी। गुस्सा मत कर। तुलसी सब जैसी नहीं है। सत्य ही वह अनाथ है। घर से बाहर निर्वासित दस वर्ष की ब्राह्मण की लड़की। कौन ब्राह्मण उसके साथ शादी करेगा? कहां जाएगी वह?"

"क्यों, तुम तो हो न। फिर क्यों कहीं जाए? मुझको तुम कहते, तो मैं दहेज का नकद रुपया खर्च करके उसकी शादी कर देती। पर अब ...."

"ए रुक्मिणी, सुन। चिन्तोपन्त भट्ट ने उसकी जन्मपत्री मिलाई है। उसके भाग्य में ब्राह्मण पति मिलना नहीं लिखा है।"

रुक्मिणी जैसे समझ गई। एकदम चुप हो गई। मन में खूब ईर्ष्या से जली। पर क्या कर सकती थी।

दिन पर दिन बीतते गए। महीने भी बीत गए। विठोबा जब तुलसी के पास जाने का प्रसंग उठाता, तो रुक्मिणी सिर पटक कर उसे जाने न देती।

विठोबा रुक जाता था।

इसी तरह करते-करते वर्ष भी बीत गया। अब विठोबा से नहीं रहा गया। उसने कहा, "रुक्मिणी, मैं तुलसी से वादा कर आया था कि घर पहुंच कर तुमको भेंट भेजूंगा। अपना वचन तो मुझे पालना ही चाहिए। मैं जा रहा हूं।"

"तुम क्यों जाते हो। मैं ही जाती हूं, भेंट लेकर।"

विठोबा ने फल-फूलों से भरी एक बड़ी टोकरी रुक्मिणी के हाथ में दी। रुक्मिणी उसे लेकर घर के बाहर निकल पड़ी।

घाट (पहाड़) पार करके वह कोंकण आई। रास्ते में जंगल पड़ा। रुक्मिणी ने टोकरी फेंकी और उसको तोड़-मरोड़ डाल दिया। फिर फल-फूलों को पैर से रौंदकर मिट्टी में मिला दिया।

"ले तुलसी, भेंट।" ऐसा कहकर वह भयानक रूप से हंसी।

फिर रुक्मिणी ने क्या किया? उसने तूंबी बजाकर जंगल के नागों को इकट्ठा किया। उनमें से पांच-सात विषैले सांप चुनकर उसने एक झोली में बन्द करके रखे और फिर तुलसी के घर के रास्ते पर जल्दी-जल्दी चलने लगी।

आधी रात को वह तुलसी के घर पहुंची। उस समय सियार जोर-जोर से बोल रहे थे। हवा में सूं-सूं की आवाज आ रही थी। उल्लू की आवाज भी इधर-उधर सुनाई पड़ रही थी। बिल्ली को पेट के पास रखकर तुलसी सो रही थी।

स्वप्न में वह विठोबा से बात कर रही थी।

"तुलसी, तुलसी, दरवाजा खोल।"

तुलसी हड़बड़ाकर उठी। एकदम घबरा गई। वैसी ही बैठी रही।

"तुलसी दरवाजा खोल।"

"तू कौन है?" तुलसी ने पूछा।

"मैं पंढरपुर का विठोबा हूं। दरवाज़ा खोल।"

"यह विठोबा की आवाज नहीं है। यह तो स्त्री की आवाज है!"

"मैं रुक्मिणी हूं विठोबा की स्त्री। दरवाजा खोल।"

तुलसी को डर लगा। कौन है? पता नहीं? डाकिन है कि कौन है?

"मैं, दरवाजा नहीं खोलूगी।" तुलसी ने निश्चय करके जवाब दिया।

"अरे! विठोबा ने तेरे लिए भेंट भेजी है। उसको तो ले। मुझे बहुत जल्दी लौटकर जाना है।"

"भेंट हो या कुछ भी हो। बाहर खूंटी पर टांग कर चली जा।"

रुक्मिणी ने खूंटी पर झोली टांग दी और चली गई। बुदबुदाती हुई, "देखती हूं, तुझे विठोबा कैसे पंढरपुर ले जाता है।"

X X X

रुक्मिणी जल्दी-जल्दी चलकर लौट आई। पसीने-पसीने हो गई।

"क्यों, इतनी जल्दी वापस आ गई? दो दिन वहां रही क्यों नही? तुलसी के हाथ की रसोई तो चखकर देखतीं।" विठोबा ने कहा।

"अरे, इतनी छोटी लड़की से मैं क्या काम लूं? सचमुच कितनी अच्छी लड़की है वह। मन करता था कि, बस एकदम उसको ले ही आऊं। पर तुम्हारे बिना किसी के साथ वह आना मंजूर ही नहीं करती थी। कितनी अदब-कायदे वाली लड़की है। मुंह से जैसे शब्द ही नहीं निकलते। बड़ी सद्गुणी और गरीब है। सचमुच तुम जल्दी जाकर उसे ले आओ। कब जा रहे हो?"

विठोबा आनन्द से भर गया। सबका मन जीतने वाली वह काली सांवली लड़की किसको अच्छी नहीं लगेगी। फिर वह उसी के चिन्तन मे मग्न हो गया। बोला, "तुम तो अभी होकर आई हो न। ठीक तो है न तुलसी? जाऊंगा दो-चार महीने में।"

"तुम एकदम चिन्ता मत करो। और जब तुम जाना, तो उस समय खास मेरी चोली, साड़ी, चूड़ी, उसको देने के लिए लेते जाना।"

तुलसी का मौन

रुक्मिणी वापस गई, तो तुलसी की नींद भी हर ले गई। उसका स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया।

"जल्दी आऊंगा - ऐसा कहकर विठोबा गया। वर्ष बीत गया पर अभी तक उसका कोई पता नहीं और आधी रात में एक स्त्री आती है और उसको भेंट देती है कि-क्या देती है? क्या वह रुक्मिणी ही थी? गुस्सा होकर तो नहीं चली गई? कि कोई और था? या चुड़ैल?"

दो दिन तक तो मारे डर के तुलसी ने बिल्कुल कोई दरवाजा नहीं खोला। वैसे भी विठोबा के जाने के बाद से वह केवल सामने का दरवाजा खोलती थी। बाकी सब बंद ही रहते थे।

तीसरे दिन तुलसी ने दरवाजा खोला। दरवाजा मोरचे से खूब कसकर बैठ गया था। खूब धक्का देने से वह खुला।

"क्या भेजा है विठोबा ने? वह स्वयं क्यों नहीं आया? पर उसको व्यर्थ दोष क्यों दूं? वह यदि भूल ही गया होता, तो मेरे लिए भेंट क्यों भेजता?"

ऐसा विचार करते-करते उसने झोली निकाली। वैसे ही फुसफुस करके सांप बाहर निकल गए और घर-भर में फिरने लगे।

तुलसी एकदम घबरा गई।

"यह क्या भेंट है? या मसखरी है?"

तुलसी घर के बाहर भागी। एक नाग ने बिल्ली को काट लिया। वह तड़फड़ा कर मर गई।

रोते-कलपते तुलसी अपने पड़ोसी के घर गई। "चलो भाई। मेरे घर में सांप चल रहे हैं। उनको मारो। मेरी बिल्ली और मुझे बचाओ।"

पड़ोसियों को दया आई। तुलसी की कायदे की बातचीत से आजकल पड़ोसियों के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा था। सब दौड़कर आए और उन्होंने सांपों को मार डाला।

तुलसी अकेली बैठकर रोने लगी।

"विठोबा ने मेरे संग कपट क्यों किया? मैंने उनका क्या बुरा किया? क्या यह सब रुक्मिणी का तो काम नहीं हैं? विठोबा ने मुझे जीवन दान दिया। प्रेम से बात की। तब फिर ऐसा कपट क्यों किया?

गरीब-गुरबा के संग क्या अमीर लोगों को ऐसा प्राणघातक हंसी-मजाक करना चाहिए? कौन इसका न्याय करेगा? बाप ने कपट किया। विठोबा ने कपट किया। सारे पुरुष क्या ऐसे ही हैं? पहले दया-माया दिखलाते हैं। फिर पीछे ठुकराते हैं। ऐसा क्यों, भगवन्! रुक्मिणी को मेरी जरूरत नहीं थी, तो विठोबा को तो यहां आना चाहिए था। पर ऐसा छल क्यों? दुनिया तो मुझको पापी समझती है। पर मैं विठोबा के भरोसे सुखी थी। अब किसकी ओर देखूं? किसको कहूं? मेरी बिल्ली भी चली गई।"

इस तरह के विचार मन में ला-लाकर तुलसी सूखने लगी। एक दिन, दो दिन पर कभी कुछ खा लेती थी। वह भी इसीलिए कि विठोबा मिलेगा, तब तक प्राण रक्षा होती रहेगी।

तुलसी दिन-दिन दुर्बल होने लगी। और सत्य ही एक दिन सवेरे द्वार की ओर देखती है, तो हंसता हुआ विठोबा खड़ा था।

"तुलसी, मैं आ गया।"

तुलसी ने उसकी ओर देखा। पर न हंसी, न बोली।

"तुलसी, मैं आया नहीं, इसी से तुझे गुस्सा आया है? कितनी दुर्बल हो गई है तू? अब मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊंगा। मैं और पहले ही आता। पर रुक्मिणी ने छोड़ा ही नहीं। मेरी भेजी हुई भेंट तुझे पसन्द आई क्या?"

"क्या बात है, तुलसी? तू बोलती क्यों नहीं है? गुस्सा छोड दे और बोल मुझसे।"

फिर भी तुलसी न बोली।

तुलसी अपने मन में बोली - "विठोबा, तुमसे क्या कहूं और कैसे कहूं? तेरा कपट तुझसे ही कैसे कहूं? और यदि रुक्मिणी ने भी छल किया हो मुझसे, तो उसे कहकर मैं पति-पत्नी मे अशान्ति क्यों डालूं? क्या बोलूं?'

तुलसी ने रसोई की। विठोबा को परोसा। हमेशा की तरह विठोबा हंसी मसखरी करने लगा। पर तुलसी गम्भीर और चुप थी।

"बिल्ली कहां गई?" विठोबा ने पूछा। पर तुलसी ने उत्तर नहीं दिया।

"प्रतीत होता है कि तुझे बहुत क्रोध आया है मेरे ऊपर। अच्छा सुन तुलसी, हम लोग शीघ्र ही विवाह करेंगे। रुक्मिणी ने तुझे चूड़ियां, चोली, साड़ियां और मंगल-सूत्र भेजा है। पंढरपुर चलोगी न?"

तुलसी फिर भी कुछ न बोली।

पृथ्वी माता

पिछले साल-भर में तुलसी बहुत दुबली हो गई थी। पर उसकी ऊंचाई बढ़ गई थी। आंखे दुःख से भरी दिखाई देती थीं, पर उनमें तरुणाई का तेज था। विठोबा के जाने के बाद से तुलसी कभी चोटी करती थी, कभी नहीं। खाना-पीना भी नाममात्र को करती थी।

विठोबा ने तुलसी को ध्यान से नए रूप में देखा। अब वह कोई अबोध लड़की नहीं थी। पर ऐसा लगता था कि जैसे उसके हृदय पर कोई बड़ी चोट लगी हो। रोने-पीटने और किच-किच करने का स्वभाव तो उसका पहले से ही नहीं था। सहनशीलता भी उसमें हद से ज्यादा थी। तुलसी के दुख का रहस्य उसकी समझ में नहीं आया।

विठोबा ने निश्चय किया - कुछ दिन इसी तरह जाने दो।

दो दिन बीते। चार दिन बीते। दस दिन बीते। पर तुलसी का मौन (चुप्पी) नहीं छूटा।

विठोबा का मुंह सूख गया। "बोल, तुलसी! बोल। गुस्से से ही बोल। प्रेम से बोल। कुछ तो बोल।" वह तुलसी से विनय करने लगा। पर काठ की पुतली जैसी तुलसी चुप ही रही।

तुलसी को प्रसन्न करने के विचार से विठोबा बोला, "तुलसी, दो गांव के बाद उस तरफ मन्दिर में ललित (कहानी के साथ कीर्तन) है। देखने चलती है क्या? तरह-तरह के स्वांग देखने में मजा आएगा।"

तुलसी विठोबा के साथ चल पड़ी। राघोपन्त के गांव में आई। तुलसी के मुंह से बोल निकलवाने के लिए ही विठोबा ने ठहरने की जगह तुलसी के पिता राघोपन्त का घर पसन्द किया।

"राघोभट्ट, दरवाजा खोलो। हम लोग यात्रा करने आए हैं। रात को ठहरने की जगह दो।"

"कौन है? यहां से निकल जाओ। हम लोग गरीब आदमी हैं। पेट की लड़की को तो गरीबी के कारण जंगल में छोड़ आया। तब दूसरे को कहां से खाना-पीना दें। जाओ, साहूकार के पास जाओ।"

"भट्ट जी, सीधा-सामग्री, पैसा-वैसा, सब मेरे पास है। पर मेरे साथ यह ब्राह्मण की लड़की है। इसे कहां ले जाऊं?"

"अच्छा। तब आओ अन्दर।" कहकर राघोपन्त ने दरवाजा खोला।

तुलसी के चले जाने के बाद से उसकी मां बिस्तर पर ही पड़ी रहती थी। केवल काम के समय

ही उठती थी। पिता ने भी तुलसी को नहीं पहचाना। मां तो अन्दर ही सोई थी। तुलसी ने पिता को भी अपनी पहचान नहीं कराई, न उसके पांव ही छुए। मां को भी देखने अन्दर नहीं गई।

विठोबा ने दाल-चावल, भाजी-तरकारी, आटे की थैली - सब राघोपन्त के हाथ में दिया। राघोपन्त को बहुत प्रसन्नता हुई। बोला, "मेरी स्त्री तो रोती और कराहती रहती है। वह दो वार रसोई नहीं बना सकेगी। ग्वाला भाई! क्या यह लड़की रसोई बना सकेगी?"

"हां, करेगी क्यों नहीं।" विठोबा ने इशारा किया। तुलसी ने चूल्हा जलाया। पर घर में बर्तन कहां थे। राघोपन्त बोला, "ठहरो। मैं जाकर पड़ोसी से बर्तन मांग लाता हूं। अच्छी तरह रसोई बनने दीजिए।"

वह जाकर पड़ोसी से बर्तन मांग लाया। सुन्दर तांबे, पीतल के बर्तन थे। धनवान मेहमान के लिए थाली, कटोरी, लोटा - सब ले आया। पानी पीने का लोटा भी लाया। बैठने के लिए पीढ़ा भी लाया।

तुलसी ने सुन्दर स्वादिष्ट रसोई की। खूब तृप्त होकर उन लोगों ने खाना खाया। मां के लिए उसने फलाहार की थाली तैयार की। राघोपन्त ने ले जाकर थाली अपनी स्त्री को दे दी। ऐसा स्वादिष्ट पदार्थ उसने पहली ही बार खाया।

तुलसी ने भोजन नहीं किया। यह विठोबा ने देख लिया। बचा हुआ खाना उसने उठा कर छींके पर रखा। जूठे बर्तन उठाकर आंगन में रख दिए। अंधेरी रात में कहां घिसती (साफ करती)?

साड़ी का आंचल ठीक कर तुलसी तैयार हुई कि मन्दिर में ललित देखने जाना है। विठोबा ने कामरी कन्धे पर रखी और तुलसी से कहा, "चलो।"

इतने में पान-बीड़ा खाकर खूब तृप्त हुआ राघोपन्त बोला, "ग्वाला भाई! हम लोग भी तुम्हारे साथ चलेंगे। और मेरी सदा की रोगिणी स्त्री सदा दुखी रहती है। सुनो, भाई। तुम्हारे बहाने उसका भी मनोरंजन हो जाएगा। यही नहीं, यदि इस ब्राह्मण की लड़की को लोग तुम्हारे साथ देखेंगे, तो व्यर्थ में बेचारी की निन्दा करेंगे। लड़की, तू रहेगी घर में! करेगी पहरा बर्तनों का? ये दूसरे के बर्तन मैं मांगकर लाया हूं। इसलिए रखवाली करनी ही चाहिए।"

तुलसी वैसी ही पीछे लौट आई और जाकर पीछे के दरवाजे पर बैठ गई।

राघोपन्त ने अपनी स्त्री को उठाया। धनवान यजमान स्वयं अपने घर आया। ललित दिखाने भी ले जा रहा है। ऐसा अच्छा मौका क्यों हाथ से जाने देना चाहिए। भगवान का नाम भी सुनने को मिलेगा और मनोरंजन भी होगा।

त्रिवेणीबाई ने लड़की को देखा नहीं था। तुलसी ही बराबर उसको टाल रही थी। अंधेरे में बैठी भी थी। करते-कराते तीनों बाहर निकले और मन्दिर गए। तुलसी पीछे के दरवाजे पर बैठकर बर्तनों की चौकसी करने लगी।

तुलसी का मन बहुत दुखी था - "सत्य ही, क्या पिता ने मुझे नहीं पहचाना? क्या केवल अन्न के लोभ से उन्होंने ऐसा किया? मां ने ही मुझे पहचाना होता। पर क्यों दूं मैं यह कठिन परीक्षा? उनके सामने न जाना ही अच्छा है ... और, विठोबा भी वैसा ही है। सत्य ही, कौन मेरा सच्चा साथी है? कौन सच्चा है, कौन खोटा? विठोबा ने मुझे घर-द्वार दिया। यदि उसने मेरा अपकार भी किया, तो उसने मुझे जो आश्रय दिया, वह मैं कैसे भूलूं? अच्छा ही हुआ जो मैं नहीं बोली। उपकार करने वालों को बुरी बात क्यों कहें? मुझे चुप ही रहने दो, हे पृथ्वी माता! मुझे अपने जैसी सहनशील बना। गूंगी ही रहने दे।"

इन्हीं विचारों में तुलसी मग्न हो गई थी। इतने में एक बड़ा कुत्ता आंगन में घुसा। एक-एक करके बर्तन वह मुंह में पकड़ता था और बाहर ले जाकर कहीं फेंक आता था। फिर दूसरा ले जाता था। तुलसी ने यह देखा, परन्तु उसकी इच्छा कुत्ते को 'हुड़त्' कहने की भी नहीं हुई। वैसे ही वह ठुड्डी पर हाथ रखकर सोचती रही।

कुत्ता भी बाहर चला गया। उसको भी झल्लाहट हुई। पर वह कुत्ता कहां था? वह तो विठोबा था। मन्दिर में उसको आनन्द नहीं आया, तो उसने सोचा, "चलो कुछ शैतानी ही करें। कुत्ता होकर कोई नई बात करूंगा, तो 'हुड़त' जैसा शब्द तो तुलसी के मुंह से निकलेगा और मुझे सुनने को मिलेगा।"

पर तुलसी ने तो जैसे सारे संसार से ही मौन रख लिया था। विठोबा निराश हो गया।

उसको फिर एक उपाय सूझा। उसको ध्यान आया कि बिल्ली पर तुलसी का बहुत प्रेम है उसने एकदम वैसा ही रूप धारण किया। "म्याऊं, म्याऊं" करके वह बिल्ली तुलसी के पैर के पास घुमड़ने लगी। उसको चाटने लगी। उसको खुरचने लगी। पर तुलसी ने अपना हाथ तक उसके शरीर पर नहीं फिराया - बोलना तो बहुत दूर। उसकी आंख के आंसू भी जैसे अटक गए थे। सूखी, शून्य नजर कहीं दूर डालती हुई वह गुमसुम बैठी रही। बिल्ली भी धीरे-धीरे चली गई।

सवेरा होने लगा। सब लोग मन्दिर से घर लौटे। त्रिवेणीबाई अपनी कोठरी में जाकर पड़ गई। वह बहुत थक गई थी। यह मेहमान लड़की रात भर जागी है - यह भी ख्याल नहीं हुआ।

"सो जाऊं, सवेरे पूछताछ करूंगी।" मन में ऐसा कहकर वह अन्दर जाकर सो गई।

झुटपुट प्रकाश में विठोबा ने तुलसी से कहा, "चलो, घर चलें।"

तुलसी उठी। राघोपन्त पीछे था। उसने देखा कि छोटे-छोटे बहुत से बर्तन गायब हैं। वह सोचने लगा - "यह मेहमान कहीं लफंगा तो नहीं? इस लड़की ने ही बर्तन लिए होंगे।"

"कहां हैं और सब बर्तन?" उसने पूछा। तुलसी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"दूसरों के बर्तन में गरीब आदमी कहां से भरूंगा? एक रात तुम लोगों को ठहरने दिया, उसका मुझे यह बदला? बोल, कहां ले गई वे सब बर्तन?"

तुलसी फिर भी चुप।

राघोपन्त पास आया। उसे सन्देह हुआ - क्या यह तुलसी नहीं है? और उसने उसी क्षण क्रोध से तिलमिलाकर दो-चार थप्पड़ जोर से उसके गाल पर मारे। तुलसी ने हूं या चूं भी नहीं किया। गाल एकदम लाल हो गया। पर तुलसी की मुद्रा का जरा-सा भी भाव नहीं बदला। आंखों से आंसू की बूंद भी नहीं आई। गाल को जरा सहलाने के लिए उसने हाथ भी ऊंचा नहीं किया। वह वैसे ही खड़ी रही।

अब विठोबा से नहीं रहा गया, "भट्टजी, बर्तन मैंने लिए हैं। अभी तुमको देता हूं।"

विठोबा दूसरी ओर कोने में झाड़ में से सब बर्तन उठाकर लाया। राघोपन्त चुप खड़ा था। अब

भी वह तुलसी की ओर क्रोध की दृष्टि से देख रहा था। विठोबा ने अपनी मोहरों की थैली खोली और उसमें के सब सिक्के आंगन में फेंक दिए।

"लो ये, भट्टजी! अपने ग्वाले दामाद का उपहार लो। हम जा रहे हैं।"

राघोपन्त मोहरों की ओर ललचाई नजरों से देखता हुआ दबी आवाज से गन्दी गालियां देते हुए बोला, "निकल जा, कमनसीब। अपना काला मुंह अपनी मां को तो मत दिखा। निकल यहां से। मुंह काला कर।"

तुलसी गुमसुम बाहर निकल गई। विठोबा ने उसका हाथ पकड़ लिया। बिना कुछ बोले भारी मन से दोनों घर आए।

तुलसी ज्यों ही अन्दर घुसने लगी कि विठोबा ने कसकर उसका हाथ पकड़ा और कहा, "बोल, तुलसी बोल। तुझे मेरी शपथ है। कुछ तो बोल। क्या हुआ? मुझ से कह न। चल तुलसी, हम लोग अभी अपना विवाह करें, पंढरपुर जाकर। रुक्मिणी ने तुझे उपहार दिया है, चल। बोल, तुलसी बोल।"

विठोबा के ऐसे आर्त शब्द सुनकर तुलसी का धैर्य टूट गया। आंखों से आंसू पिघल-पिघलकर गिरने लगे। वह आंगन के बीचों-बीच खड़ी हो गई।

"रुक्मिणी की चुगली मैं विठोबा से नहीं करुंगी। वह भयंकर सत्य मैं नहीं कहूंगी। कहने से भी क्या फायदा? विठोबा मेरा है। मैं क्यों उसकी दुनिया दुखी करूं। रुक्मिणी मुझे नहीं चाहती है, तो मैं क्यों वहां जाऊं? विठोबा को पकड़े रखकर भी मुझे क्या करना है? जाने दो उसको, रुक्मिणी के पास जाने दो।"

ऐसा विचार करते हुए उसने हाथ जोड़े। आंसुओं की धारा को पोंछकर उसने मन्द हास्य करते हुए विठोबा की ओर देखा। विठोबा का दिया हुआ उसने वस्त्राभूषण पहन लिया। पीली साड़ी, हरी मिरजई, हरी चूड़ियां, गहने, इत्यादि - सब पहन लिए और बालों को खोलकर छोड़ दिया।

विठोबा आनन्द से बोला, "बोल तुलसी, पहले बोल तो सही। मैं देखूं (सुनूं)।"

तुलसी ने जैसे न सुना हो, ऐसा किया। उसने हाथ जोड़कर कहा, "पृथ्वी माता, फट जाओ और मुझे अपने पेट में ले लो।" और सत्य ही पृथ्वी फट गई और उस दरार में तुलसी गायब हो गई।

विठोबा "तुलसी, तुलसी मत जाओ", कहता हुआ आगे आया। दरार में हाथ डालकर उसके बाल पकड़कर उसको खींचा। वट (लट) बाहर आ गई, तो क्या देखता है कि वह तुलसी न थी, वह था एक छोटा कोमल-सा सांवला पौधा। और उसने जो पकड़ कर रखा था, वह बाल न होकर उसी पेड़ की पुष्पमंडित (फूलों से भरी) गंजरी थी।

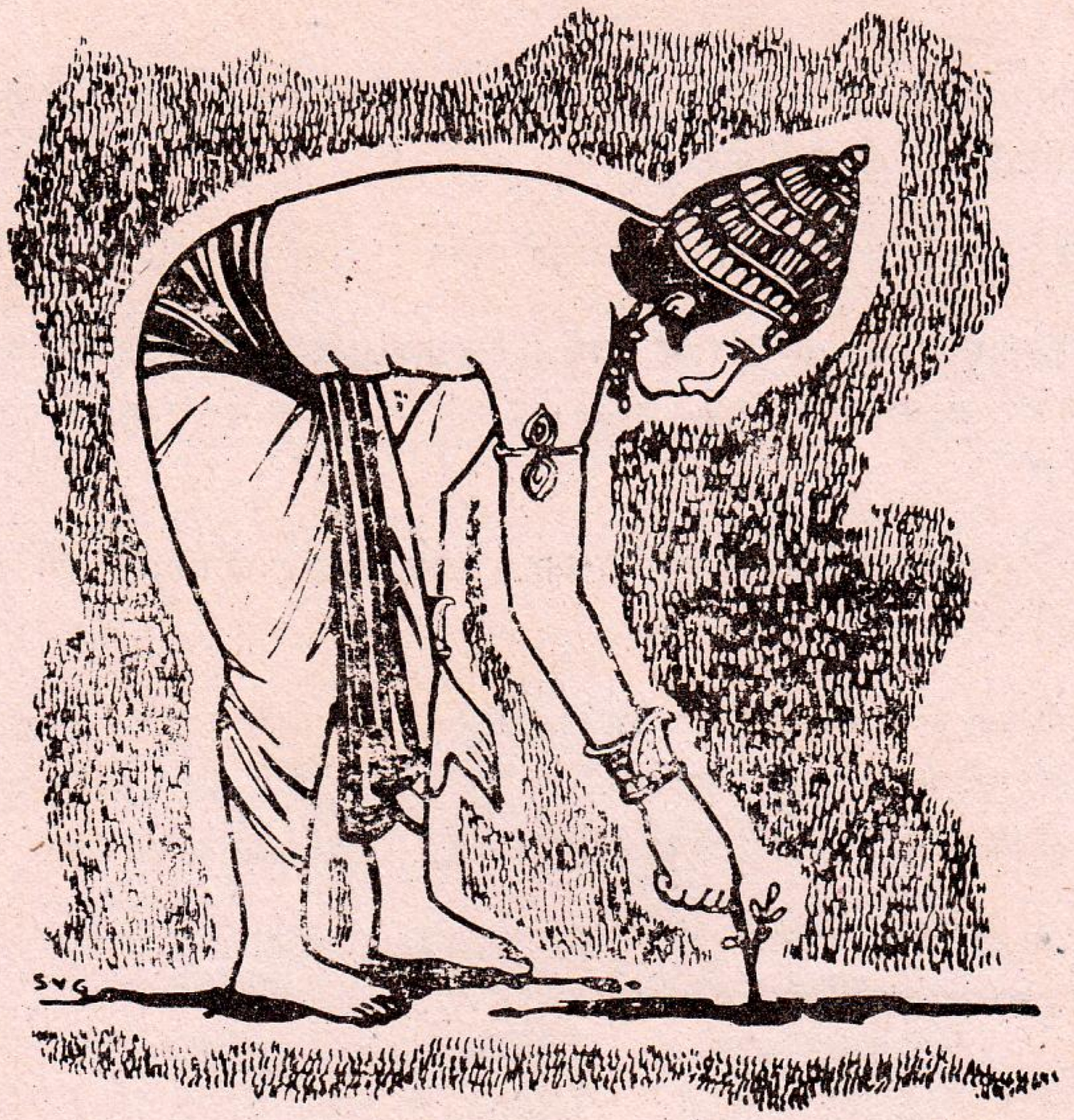

तुलसी, तुलसी! मैं सब समझ गया। तेरे न बोलने ने सब मुझसे कह दिया। तू पौधा हो गई, गूंगी हो गई तो क्या, मैं तुझे सदैव अपने गले में डालकर रखूंगा।"

उस पेड़ को हृदय पर रखकर विठोबा घर आया। उसने उसे आंगन में लगा दिया। हर साल जिस दिन तुलसी पृथ्वी में समा गई थी, उसी दिन विठोबा उसको (तुलसी के पौधे को) चूड़ी, वस्त्र इत्यादि सब पहनाकर सबके सामने उससे विवाह करता था। उसी समय से यदि क्षण-भर भी तुलसी की माला गले में न हो, तो विठोबा बेचैन हो जाता था।

मनुष्य भी उसी समय से तुलसी का विवाह हुए बिना विवाह नहीं करते।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय